International Journal of Yogic, Human Movement and Sports Sciences 2023; 8(2): 406-409

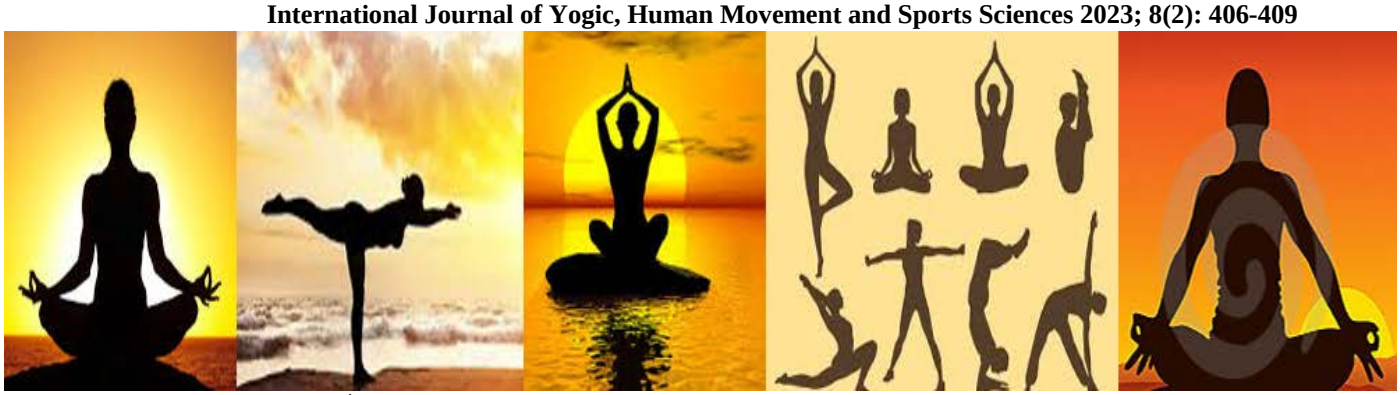

ISSN: 2456-4419
Impact Factor: (RJIF): 5.18
Yoga 2023; 8(2): 406-409
© 2023 Yoga
www.theyogicjournal.com
Received: 16-10-2023
Accepted: 21-11-2023

कुलदीप कुमार
शोधार्थी, पी.एच.डी, यौगिक विज्ञान विभाग, लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

डॉ. सी. पी. सिंह भाटी
सह-आचार्य, खेल मनोविज्ञान विभाग, लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

डॉ. माधवी चंद्रा
प्राध्यापिका, योग विभाग, सैम ग्लोबल विश्वविद्यालय, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
कुलदीप कुमार
शोधार्थी, पी.एच.डी, यौगिक विज्ञान विभाग, लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग विद्या के तत्व

कुलदीप कुमार, डॉ. सी. पी. सिंह भाटी, डॉ. माधवी चंद्रा

DOI: https://doi.org/10.22271/yogic.2023.v8.i2f.1494

सारांश
उपनिषद् भारतीय ज्ञान का भंडार है। वेदों का अंतिम भाग होने के कारण इन्हें वेदान्त भी कहते हैं। पूर्व में वेदान्त शब्द से उपनिषद् ग्रन्थ ही अर्थ लक्षित होता था। किंतु कालान्तर में उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र तथा सभी प्रकार की गीताओं तथा उन पर आधारित ज्ञान को वेदान्त शब्द से ही सम्बोधित करते हैं। उपनिषदों की कुल संख्या 220 मानी जाती है जिनमें प्रमुख उपनिषदों की संख्या 11 है। श्वेताश्वतरोपनिषद् एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपनिषद् है। कुछ विद्वान् श्वेताश्वतरोपनिषद् को प्रमुख उपनिषदों की श्रेणी से भिन्न रखते हैं। लेकिन श्वेताश्वतरोपनिषद् में ब्रह्मविद्या का वर्णन होने के कारण तथा आदि शंकराचार्य जी का भाष्य प्राप्त होने से यह प्रमुख 11 की श्रेणी में आता है तथा योगविद्या का वर्णन होने से यह यौगिक उपनिषदों की श्रेणी में भी प्राप्त होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में सर्व प्रथम योग विद्या का लक्षणों तथा सिद्धि सहित स्पष्ट वर्णन मिलता है।

कूट शब्द : योग, ब्रह्म, आत्मा, ब्रह्मविद्या, यौगिक सिद्धियाँ

प्रस्तावना
योग भारत की एक प्राचीन विद्या है। जिसमें विभिन्न साधना पद्धतियां सम्मिलित हैं जिनमें ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग, तंत्रयोग तथा हठयोग प्रमुख हैं। योग का वर्णन सर्वप्रथम वेदों में संक्षिप्त रूप से प्राप्त होता है। योग की क्रियाओं और योग के अंगों का स्पष्ट वर्णन प्रथमतः उपनिषदों में प्राप्त होता है। 'उपनिषद्' शब्द, 'उप' और 'नि' उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु से निष्पन्न हुआ है। 'उप' का आशय है समीप एवं 'नि' का अर्थ है ध्यानपूर्वक, और 'सद' धातु के चार अर्थ होते है- बैठना (गुरू के समीप बैठना), नाश करना (अज्ञान का नाश करना), प्राप्त करना (ज्ञान/गति/परमपद प्राप्त करना) और शिथिल करना

(माया के बंध को शिथिल करना)। अतः उपनिषद् शब्द का अर्थ हुआ - शिष्य का गुरू के समीप ध्यानपूर्वक परम तत्व का गूढ उपदेश सुनने के लिये बैठना। जिससे शिष्य की अविद्या का नाश होता है, उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है। तथा उसके कर्म-बन्धन एवं तज्जन्य दुःखादि का शिथिलिकरण होकर क्षय होता है।

वेदों के अनेक उपनिषद् प्राप्त होते हैं। 'मुक्तिकोपनिषद्' मे चारों वेदों की शाखाओं की संख्या दी गई है और प्रत्येक शाखा का एक-एक उपनिषद् होना बताया है। इस प्रकार चारों वेदों की अनेक शाखाऐं हैं और उन शाखाओं के उपनिषद् भी अनेक है। विद्वानों ने ऋग्वेद की 21 शाखाऐं, यजुर्वेद की 109 शाखाऐं, सामवेद की 1000 शाखाऐं तथा अथर्वेद की 50 शाखाओं का उल्लेख किया है। इस दृष्टि से सभी वेदों की शाखाओं के अनुसार 1180 उपनिषद् होनी चाहिए, परन्तु आज हमें 220 उपनिषद् ही प्रकाशित मिलते हैं। अन्य उपनिषद् या तो पाण्डुलिपि के रूप में कहीं गुप्त रूप से सुरक्षित तथा अप्राप्त हैं अथवा वह लुप्त हो चुके हैं। प्राप्त 220 उपनिषदों में से 108 उपनिषद् मुख्य माने जाते हैं।

'मुक्तिकोपनिषद्' में, (श्लोक संख्या 30 से 39 तक) 108 उपनिषदों की सूची दी गयी है। इन 108 उपनिषदों मे से 'ऋग्वेद' के 10, 'शुक्ल यजुर्वेद' के 19, 'कृष्ण यजुर्वेद' के 32, 'सामवेद' के 16 तथा 'अथर्ववेद' के 31 उपनिषद् है। उक्त 108 उपनिषदों में से भी 11 उपनिषद् ही प्रमुख माने गए हैं। जिन पर आदि शंकराचार्य जी के भाष्य प्राप्त होते हैं। वे हैं-

(1) ईशावास्योपनिषद् (शु.य.),
(2) केनोपनिषद्, (साम.)
(3) कठोपनिषद् (कृ.य.),
(4) प्रश्नोपनिषद् (अथर्व.),
(5) मुण्डकोपनिषद् (अथर्व.),
(6) माण्डूक्योपनिषद् (अथर्व.),
(7) ऐतरेयोपनिषद् (ऋग्वेद),
(8) तैत्तिरीयोपनिषद् (कृ.य),
(9) छान्दोग्योपनिषद् (साम.),
(10) बृहदारण्यकोपनिषद् (शु.य.), एवं
(11) श्वेताश्वतरोपनिषद् (कृ.य.) ।

उक्त 11 उपनिषदों से भिन्न कुछ अन्य उपनिषदों को भी विशेष महत्व प्राप्त है क्योकि वह योगविद्या का सांगोपांग वर्णन करते हैं जिन्हें यौगिक उपनिषदों की संज्ञा प्राप्त हैं उक्त 11 प्रमुख उपनिषदों के अतिरिक्त यौगिक उपनिषदों का भी बहुत महत्व है। यौगिक उपनिषदों की संख्या लगभग 20 मानी जाती है। जिनमें श्वेताश्वतरोपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, योगचूड़ामण्युपनिषद्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, योगतत्वोपनिषद्, योगराजोपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद्, योगशिखोपनिषद् तथा योगोपनिषद् आदि मुख्य हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् का संक्षिप्त परिचय

यह कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद् है। जिसमें छः अध्याय प्राप्त होते है। प्रथम अध्याय में जगत् का मूल कारण जानने की जिज्ञासा की गई है जो तत्वज्ञान की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। जिसमें सृष्टि को सतत् गतिमान एक चक्र प्रवाह के रूप में वर्णित किया गया है। मूल तत्व, परमात्मतत्व को जानने की आवश्यकता तथा उसका फल समझाते हुए जीव, प्रकृति एवं ईश्वर तथा आत्मा, भोक्ता, भोग्य आदि का स्पष्ट मिलता है। ॐकार साधना द्वारा तिल में तेल की तरह हृदय प्रदेश में स्थित परमतत्व के साक्षात्कार का निर्देश किया है। द्वितीय अध्याय में ध्यान का महत्त्व समझाते हुए उसके विधि-विधान, प्राणायाम, स्थान आदि की मर्यादाएँ समझाते हुए उन्नति के लक्षण भी दर्शाए गये हैं। तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति संचालन और विलय में समर्थ परमात्म सत्ता की सर्वव्यापकता तथा उसे जानने की महत्ता का वर्णन है। इसी में जीवात्मा एवं परमात्मा की स्थिति को

एक ही डाल पर बैठे दो पक्षियों के दृष्टान्त से समझाया गया है। पंचम तथा षष्टम् अध्याय में विद्या एवं परमात्मा की विलक्षणता बतलाकर परमात्मा को ही उपास्य मानने वाले औपनिषदीय ज्ञान का अनुगमन करने की बात कही गई है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में वर्णित योग विद्याः

श्वेताश्वतर उपनिषद् में आसन और ध्यान की विधि का वर्णन मिलता है कि योगी को शरीर के तीनों अंगों (छाती, गर्दन और सिर) को सीधा रखकर, इन्द्रियों कों मन के साथ हृदय में रोककर, ओंकार की नौका पर सवार हो भय देने वाले सभी प्रवाहों से पार उतरना चाहिए। यथा –

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिरुध्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्स्त्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥[1]

योगी (शरीर की) सारी चेष्टाओं को वश में करके प्राणों को रोके और प्राण के क्षीण होने पर नासिका से बाहर निकाल दे। जैसे सचेत सारथी घोड़ों की चंचलता को नियंत्रित कर रथ को अत्यंत सावधानीपूर्वक लक्ष्य की ओर ले जाता है, वैसे ही विद्वान् को जागरूक होकर मन को नियंत्रित कर लक्ष्य में लगाना चाहिए। यथा-

प्राणान्प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥[2]

योगी को योगाभ्यास ऐसे स्थान पर करना चाहिए जो सम हो, शुद्ध हो, गंदगी, अग्नि, वालु (कंकड़ पत्थर) आदि से रहित हो, जहाँ पर जलाशय, लता आदि मन के अनुकूल हो और जो आँखों को पीड़ा देने वाला दृश्य न हो, एकान्त हो और वायु के झोंको से रहित हो अर्थात् मंद शीतल वायु बहती हो। यथा-

समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।
मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥[3]

योगजन्य सिद्धियों का भी कथन इस उपनिषद् में प्राप्त होता है। योगी को जब योग की अवस्था मे कुहरा, धुआं, सूर्य, अग्नि, जुगनूं, विद्युत, विल्लौर और चन्द्र आदि के दर्शन होते है। तदनन्तर ब्रह्म का प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। यथा-

नीहारधूमार्कानलानिलानां
खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥[4]

योग के प्रभाव से जब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश प्रकट होते हैं अर्थात् इन पांचों तत्वों को जीत लिया जाता है, तब योगी रोग, जरा, दुःख आदि से मुक्त हो जाता है, क्योंकि वह ऐसे शरीर को प्राप्त कर लेता है जो योगाग्नि से निर्मित हुआ है। यथा –

पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥[5]

[1] श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/8
[2] श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/9
[3] श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/10
[4] श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/11
[5] श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/12

योग साधना की सफलता से सिद्धि के कुछ लक्ष्ण दिखाई देते हैं जेसे- शरीर हल्का हो जाता है, आरोग्य का अनुभव होता है, विषयों की लालसा गिर जाती है, शरीर की कान्ति बढ़ जाती है, स्वर मधुर हो जाता है, गन्ध शुद्ध हो जाती है और मल-मूत्र भी थोड़ा होता है। यथा-

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥6

योग समाधि से आत्मतत्व (ब्रह्मतत्व) के दर्शन होते है अर्थात् सिद्धियों के बाद योगी को आत्मा के शुद्ध स्वरूप का साक्षातकार होता है। जैसे- मिट्टी-कीचड़ आदि से लिप्त रत्न धोये जाने पर तेजोमय होकर चमकने लगता है। इस प्रकार देही (पुरूष) आत्मतत्व के दर्शन कर शोकमुक्त हो कृतार्थ हो जाता है।

तत्पश्चात् योगी जब मुक्त होकर दीपक के तुल्य आत्मचेतना से उस ब्रह्म को देखता है जो अजन्मा, अटल(कूटस्थ) और सब तत्वों से विशुद्ध है, तब उस ब्रह्मतत्वरूप देव को जानकर सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है। यथा-

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधान्तम् ।
तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥[7]
यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥[8]

[6] श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/13

[7] श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/14

[8] श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/15

उपसंहारः

ब्रह्मविद्या निरूपण तथा उसकी प्राप्ति हेतु यौगिक साधनों के वर्णन दोनों ही दृष्टि से श्वेताश्वतरोपनिषद् एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपनिषद् हैं। इन दोनों ही विषयों के निरूपण हेतु यह बहुत ही सम्पन प्रतीत होता हैं। यौगिक उपनिषदों की दृष्टि से यह सर्वाधिक प्राचीन तथा सर्वमान्य उपनिषद् हैं। यद्यपि बाद में रचित उपनिषदों की तुलना में इसमें योगांगों का वर्णन संक्षिप्त रूप से मिलता है किन्तु जिनता भी मिलता है वह पर्याप्त तथा सुस्पष्ट प्रतीत होता हैं।

सन्दर्भ

1. शास्त्री, आचार्य केशवलाल वी., उपनिषत्सञ्चयनम् (प्रथम खण्ड), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण (2015)
2. शास्त्री, आचार्य केशवलाल वी., उपनिषत्सञ्चयनम् (द्वितीय खण्ड), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण (2015)
3. शास्त्री, आचार्य केशवलाल वी., उपनिषत्सञ्चयनम् (तृतीय खण्ड), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण (2014)
4. राधाकृष्णन, डॉ., भारतीय दर्शन, (प्रथम-खण्ड), राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, संस्करण-(2008)
5. राधाकृष्णन डॉ०, उपनिषदों का संदेश, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण (1951)
6. शर्मा, आचार्य श्री राम, 108 उपनिषद (ज्ञानखण्ड), संस्कृत संस्थान, बरेली, संस्करण (1996)
7. शर्मा, आचार्य श्री राम, 108 उपनिषद (साधनाखण्ड), संस्कृत संस्थान, बरेली, संस्करण (1996)
8. शर्मा, आचार्य श्री राम, 108 उपनिषद (ब्रह्मविद्याखण्ड), संस्कृत संस्थान, बरेली, संस्करण (1996)